IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

शुक्लयुगीन हिन्दी आलोचना

नाम - ओम नारायण

स्नातक - हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (2019)

परास्नातक - रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय (2021)

नेट उत्तीर्ण (2022)

हाल में - उत्तर प्रदेश, समीक्षा अधिकारी के लिए प्रयासरत

प्रस्तावना:

आधुनिक हिंदी आलोचना के केंद्रीय पुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा साहित्य में आलोचना के नवीन सिद्धांतों को प्रतिपादित करना तथा पुराने सिद्धांतों में अपने दृष्टिकोण द्वारा कमियां निकाल कर उन्हें सही करना ही शुक्ल युग इन आलोचना का प्रमुख स्तर है। द्विवेदी तथा भारतेंदु युग में जहां आलोचना का स्तर अधिक सटीकता लिए नहीं था, वही शुक्ल जी ने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि के प्रभाव से आलोचना का स्तर सुधारा शुक्ल युग में जहां छायावादी युग की प्रमुख रूप से आलोचना हुई वही छायावादी कवियों ने अपने युग विस्तार के लिए लंबे-लंबे लेख लिखें।

मूलशब्द :

शुक्लयुगीन, आलोचना, सिद्धांत, छायावाद, दर्शन, सैद्धांतिक, व्यवहारिक

सारांश :

वास्तव में हिंदी आलोचना का पूर्ण रूप शुक्ल युग में ही निखर पाया और इसका श्रेय इस युग के प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। शुक्ल युग से पूर्व दोष-दर्शन, गुणकथन, निर्णय और तुलना जैसे स्थूल तत्वों को प्रमुखता दी जाती थी पर आचार्य शुक्ल ने अपनी आलोचना में विश्लेषण **(Analysis)**, विवेचन **(Interpretation)** और निगमन **(Induction)** जैसे तत्वों को प्रमुखता दी जिनमें आलोचक की तटस्थता का तत्व भी निहित था । कवि विशेष के सामान्य गुण-दोष प्रकट करने के साथ ही उसके काव्य की मूल प्रवृत्तियों और उसमें निहित शाश्वत तत्वों की छानबीन भी की गयी। कृति को देशकाल सापेक्ष रखकर परखा गया और मानवीय मूल्यों को प्रमुखता दी गयी। इतना ही नहीं संस्कृत काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों के प्रकाश में नये पश्चिमी काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों को भी स्थान दिया गया। समीक्षा की इस नयी परिपाटी को जन्म देने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को ही है इसीलिये इस युग को शुक्ल युग के नाम से अभिहित किया गया ।

इस युग में समीक्षा के लिये जो मानदंड और शैली अपनायी गयी उनमें प्रमुख है।

- सुचि और नैतिकता
- शास्त्रीयता
- कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन
- तुलना और निर्णय
- देशकाल की समीक्षा

'गद्य साहित्य का प्रसार' के द्वितीय उत्थान (सं.1950-1975) के अन्तर्गत- समालोचना पर विचार करते हुए शुक्लजी ने लिखा है, "पर यह सब आलोचना अधिकतर बहिरंग बातों तक ही रही । भाषा के गुण-दोष, रस, अलंकार आदि की समीचीनता इन्हीं सब परम्परागत विषयों तक पहुंची। स्थायी साहित्य में परि- गणित होनेवाली समालोचना जिसमें किसी कवि की अंतति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएं दिखाई जाती है, बहुत कम दिखाई पड़ी।"

● शुक्ल युग के प्रमुख आलोचक हैं गुलाबराय, बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मीनारायण "सुधांशु", विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना क्षेत्र में प्रवेश करते ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया - साहित्यिक रुचि में परिवर्तन। इससे पूर्व हिंदी के आलोचक रीति साहित्य को ही उपयुक्त मानते थे। शुक्ल जी ने पूरी साहित्यिक परम्परा का पुनर्गठन किया। उन्होंने अपनी व्यावहारिक आलोचना के माध्यम से हिंदी कवियों का जो क्रमिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया, वह उनके समय की बदली रुचि का प्रमाण है। शुक्ल जी ने लोकमंगलकारी रूप को साहित्य के मूल्यांकन का आधार बनाया और पहली बार मूल्यांकन के मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचना सिद्धांतों का गहन अध्ययन कर समन्वयवादी आलोचना सिद्धांतों की रचना की। "शुक्ल जी ने "कविता क्या है" (सरस्वती 1908), "साहित्य" (सरस्वति 1914), "काव्य में रहस्यवाद" आदि निबंधों से सैद्धांतिक समीक्षा का सूत्रपात किया । "चिंतामणि" में संकलित निबंधों से उनके व्यापक अध्ययन और गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है।

शुक्ल जी ने हिंदी में पहली बार रस-विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रस मीमांसा में रस के शास्त्रीय विवेचन की मौलिक व्याख्या की। उन्होंने रस को काव्य की आत्मा तो माना, परन्तु रस की परम्परागत व्याख्या उन्हें मान्य न थी। उन्होंने अपने रसवाद में अनुभूति को सर्वोपरि महत्व देकर उसे लोकमानस से जोड़ा। वे अनुभूति प्रधान काव्य को ही उत्तम काव्य समझते थे। उनकी अनुभूति आत्माभिव्यक्ति प्रधान अनुभूति से भिन्न थी। उनका मानना था कि "लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।" इस प्रकार उन्होंने साधारणीकरण की पुनः प्रतिष्ठा की। रसवादी, नीतिवादी और लोकमंगलवादी होने के कारण शुक्ल जी ने तुलसी और जायसी के काव्य सौष्ठव का उद्घाटन किया, किन्तु कबीर, रीतिकाल और छायावाद के कवियों को उचित महत्व न दे सके। इसी तरह प्रबंध काव्य को उन्होंने श्रेष्ठ माना और मुक्तक काव्य तथा गीतात्मकता को उनका उतना समर्थन नहीं मिल पाया।

शुक्ल जी के आलोचक व्यक्तित्व की एक बहुत बड़ी विशेषता थी- व्यापक और सजग दृष्टि । अपने समय के हर साहित्यिक विवाद की तरफ उनका ध्यान जाता था। और वे अपनी राय भी देते थे। जितनी लगन से वे प्राचीन और मध्ययुगीन काव्य का विवेचन करते थे। उतना ही ध्यान आधुनिक साहित्य और विषयों पर भी देते थे। तभी तो काव्य के अतिरिक्त अपने समय के गद्य साहित्य की सभी पद्धतियों और प्रवृत्तियों को समझ कर उन्होंने इतिहास में उसका विवेचन किया।

निबंध की विवेचना में उन्होंने लिखा- "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है । भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।'

आचार्य शुक्ल के प्रमुख ग्रंथ हैं-"जायसी ग्रंथावली" (1925 ई.), भ्रमरगीतसार (1926 ई.),

गोस्वामी तुलसीदास (1933 ई.) हिंदी साहित्य का इतिहास (1929 ई.)।

मुख्य रूप से अगर देखा जाए तो शुक्ल युगीन आलोचना में बाबू गुलाब राय, श्यामसुंदर दास तथा स्वयं शुक्ल जी सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक समीक्षा लिख रहे थे। इस संबंध में हम शुक्ल युग की आलोचना को इस प्रकार देख सकते हैं जिसमें मुख्य रुप से आचार्य शुक्ल का योगदान है।

काव्य के रसास्वादन का लक्ष्य यदि 'आनन्द' नहीं है तो फिर क्या है? शुक्ल- जी मानते हैं कि 'भावयोग' अर्थात् कविता के द्वारा मनुष्य हृदय को मुक्ति की साधना करता है । "मुक्त हृदय मनुष्य अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लोन किए रहता है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।" (पृ.6, रस मीमांसा)। यानी कविता का लक्ष्य मनुष्य को व्यष्टि से समष्टि में लीन कर देना है। जिसे रस दशा कहा जाता है उसके विषय में शुभलजी का कहना है कि लोक हृदय में हृदय के लोन होने की दशा का नाम रस-दशा है।"

• **सैद्धांतिक आलोचना -** शुक्ला जी की आलोचना दृष्टि जिस प्रविधि पर आधारित है उसे तार्किक, विश्लेषणात्मक और निगमनात्मक विधि कहा जाता है। उसके अतिरिक्त पश्चिमी साहित्येतिहास दार्शनिक तेन के प्रत्यक्षवाद या विधेयवाद का स्पष्ट प्रभाव उनकी प्रविधि पर है। जिसमें किसी रचना का मूल्यांकन जाति, वातावरण तथा क्षड़ इसी आधार पर किया जाता है। शुक्ल जी की सैद्धांतिक समीक्षा में रसवाद और लोकमंगलवाद साथ-साथ शामिल है। उन्होंने रसवाद की नई दृष्टि से व्याख्या अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रस-मीमांसा' में की और कहा- "लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है"। पारंपरिक रसवादी विवेचन जो आरंभ में व्यापक था, किंतु पंडित राज जगन्नाथ तक आते-आतेसंकीर्ण हो गया था। उसे आचार्य शुक्ल ने पुनः लोकमंगलवाद से जोड़ा, इसके अतिरिक्त उन्होंने रस विवेचन में साधारणीकरण के सिद्धांत को अत्यधिक महत्व दिया।

साधारणीकरण की व्याख्या में एक नई अवधारणा 'रसात्मकता की मध्यम कोटि' का भी जिक्र किया। जो इस बात की व्याख्या करता है कि कभी-कभी कुछ रचना में नायक विरोधी पक्ष के प्रति सहानुभूति क्यों उत्पन्न होने लगती है। उन्होंने अपनी अन्य सैद्धांतिक मान्यताओं को 'कविता क्या है' तथा 'काव्य में रहस्यवाद' जैसे निबंधों में व्यक्त किया। जिनके आधार पर उनकी सैद्धांतिक समीक्षा के कुछ प्रतिमान निर्धारित किए जा सकते हैं।

- उन्होंने कविता को भावा योग माना और ज्ञान योग तथा कर्म योग के समकक्ष माना।
- कविता या साहित्य का प्रयोजन व्यक्ति की संकीर्ण भावना को समष्टि भावनाओं में लीन करना है ,ताकि व्यक्ति मैं पृथकत्व की अनुभूति ना रहे।
- प्रबंध काव्य का महत्व मुक्तक काव्य से अधिक है,क्योंकि रस योजना और लोकमंगल की दृष्टि से प्रबंध काव्य में बेहतर संभावनाएं होती हैं।
- उन्होंने बिंबो को अत्यधिक महत्व दिया और कहा- कि कविता में अर्थ ग्रहण ही पर्याप्त नहीं होता, बिम्ब ग्रहण भी अपेक्षित होता है।
- उन्होंने काव्य में स्पष्टता को महत्व दिया प्रतीक वाद तथा रहस्यवाद जैसी प्रवृत्तियों को सामान्यत: खारिज किया।
- 'उक्तिवैचित्र्य' के संदर्भ में उन्होंने भाव प्रेरित वक्रता को महत्व दिया, किंतु बुद्धि प्रेरित वक्रता को कविता के क्षेत्र से बाहर करके सूक्ति के वर्ग में रखा।
- अलंकारों को उन्होंने सीमित महत्व देते हुए, कविता में वांछनीय माना। किंतु स्पष्ट कहा कि जिस प्रकार कुरूप स्त्री आभूषण लादकर सुंदर नहीं बन सकती वैसे ही आभूषण गुण , सौंदर्य को बढ़ा अवश्य दें परंतु सौंदर्य उत्पन्न नहीं कर सकते।
- कविता की भाषा के संदर्भ में उन्होंने माना कि शब्दों में नाद-सौंदर्य होना चाहिए। नाम बोधक शब्दों के स्थान पर बोधक शब्द का प्रयोग होना चाहिए। पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से कवि को बचना चाहिए ,क्योंकि उनसे अपृ इसतित्व दोष उत्पन्न होता है।
- गद्य साहित्य के संदर्भ में उन्होंने कहा कि "यदि कवियों की कसौटी है तो निबंध की कसौटी है"। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।
- काव्य की दृष्टि से उन्होंने लोकमंगल की साधना अवस्था की प्रस्तुति को अधिक महत्व दिया जबकि श्रद्धा अवस्था को काम में नहीं माना।

व्यवहारिक आलोचना -

आचार्य शुक्ल की व्यवहारिक आलोचना जिन ग्रंथों में व्यक्त हुई उसमें प्रमुख हैं - जायसी ग्रंथावली ,भ्रमरगीत, गोस्वामी तुलसीदास, हिंदी साहित्य का इतिहास।

उनकी व्यवहारिक आलोचना के कुछ बिंदु इस प्रकार हैं -

- उन्होंने आदिकालीन सिद्ध-नाथ साहित्य को साहित्य के क्षेत्र से बाहर कर दिया। क्योंकि उनकी दृष्टि में उसमें संप्रदायिक मान्यताओं का प्रचार मात्र था न कि साहित्यिक या रचनात्मक अनुभूति। आगे चलकर आचार्य द्विवेदी ने उनके इस मत का खंडन किया।
- विद्यापति की समीक्षा करते हुए अध्यात्मक और श्रृंगार के मिश्रण की कठोर आलोचना की। कहा - "आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं, उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ आलोचकों ने विद्यापति के पदों को अध्यात्मिक संकेत बताया। वैसे ही जयदेव के पदों को भी।"
- उन्होंने भक्तिकाल के चारों प्रमुख कवियों पर विस्तार से लिखा। वे तुलसी की साहित्यिक रचनाशीलता को सर्वोच्च महत्व देते हैं । जायसी के 'सर्ववादी रहस्यवाद 'की भी उन्होंने प्रशंसा की है। वे सूर की 'भावप्रेरित वक्रता की प्रशंसा करते हुए भी, अति अलंकार प्रियता और लोकमंगल की सिद्धावस्था की आलोचना करते हैं।

इनकी आलोचना पद्धति का विश्लेषणात्मक होने के कारण वे रचना को गुण-दोष तक सीमित न रखकर रचनाकार की विशेषताओं एवं अन्तर्प्रवृत्ति की छान-बीन करते हैं। हिंदी के अन्य आलोचकों में जहां एकांगी दृष्टिकोण का आरोप लगाया जा सकता है, वहीं शुक्ल इन आरोपों से परे हैं। शुक्लयुगीन आलोचकों ने कवियों के रचनाओं के अध्ययन के साथ-साथ कवि के व्यक्तित्व को भी समझने का प्रयास किया। कवि की सामान्य प्रवृत्ति को उद्घाटित करना इस युग के आलोचकों का प्रमुख उद्देश्य हो गया। जैसे -डॉ.रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'कबीर' , 'पीतांबर दत्त' द्वारा लिखित 'निर्गुण संप्रदाय' आदि व्यक्तिगत अध्ययन संबंधी आलोचना है।

साहित्य को उसके युगीन परिस्थितियों में रखकर आंकने की प्रवृत्ति का प्रारंभ आचार्य शुक्ल ने किया। उन्होंने तुलसी आदि महान कवियों के महत्व को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर आंका। इतना ही नहीं कवियों एवं काव्यधारा के देशकाल पर विचार किया। इस युग के अन्य आलोचकों ने भी इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति को अपनाया ,जिसमें पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भूषण की कविताओं को देश काल की परिस्थिति में रखकर उस पर विचार किया।

• 'गुलाबराय' ने 'साहित्य संदेश' नामक आलोचनात्मक पत्रिका का संपादन करके हिंदी आलोचना के प्रचार-प्रसार में काफी सहयोग दिया। उन्होंने शिक्षा के उपयोग की दृष्टि से 'सिद्धांत और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप ' ग्रंथों की रचना की।

• विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी की मध्ययुगीन काव्य की साफ-सुथरी टीकाओं के लिए तत्कालीन आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान है । 'बाङ्मय विमर्श', बिहारी की 'बाग्विभूति' अगली 'हिंदी साहित्य का अतीत' और 'हिंदी का सामाजिक साहित्य' ग्रंथों की रचना द्वारा मिश्र जी ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया।

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में वैसा ही क्रांतिकारी परिवर्तन किया, जैसा प्रेमचंद्र ने उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में किया था। उन्होंने साहित्य को रीतिवादी मानसिकता से पूर्णत: मुक्त किया तथा पहली बार सैद्धांतिक और व्यवहारिक समीक्षा का समन्वय भी किया। रस जैसे वैयक्तिक तत्व को लोकमंगल से जोड़कर उसके भीतर निहित सामाजिक पक्ष को उभारा। उन्होंने हिंदी समीक्षा को न केवल संस्कृत काव्यशास्त्र के मानदंडों से संबद्ध किया, बल्कि अंग्रेजी समीक्षा के प्रतिमनों का भी समन्वय किया। इतना समय बीत जाने के बाद भी समीक्षा के इतिहास में इतना महत्व अक्षुण्य है।

संदर्भ ग्रंथ :

- विश्वनाथ त्रिपाठी - हिंदी आलोचना
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास
- नंददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य
- डॉ मक्खनलाल शर्मा - हिंदी आलोचना का इतिहास